International Journal of Multidisciplinary Research and Development 2015; 2(3): 100-103

International Journal of Multidisciplinary Research and Development

IJMRD 2015; 2(3): 100-103
www.allsubjectjournal.com
Impact factor: 3.672
Received: 08-02-2015
Accepted: 20-02-2015
E-ISSN: 2349-4182
P-ISSN: 2349-5979

डॉ॰ किरण ग्रोवर
एसो ॰प्रो ॰,स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग ,डी ॰ए ॰वी॰ कॉलेज, अबोहर। चलभाष–094783–20028

ब्वततमेचवदकमदबमरू
डॉ॰ किरण ग्रोवर
एसो ॰प्रो ॰,स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग ,डी ॰ए ॰वी॰ कॉलेज, अबोहर। चलभाष–094783–20028

चित्रा मुद्गल के आवां में विमर्शमूलक वैचारिकता का चिन्तने

डॉ॰ किरण ग्रोवरं

।इजतंबज
साहित्य सार्वकालिक, सार्वदेशिक व सार्वभौमिक होता है जिसमें साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता को निर्वैयक्तिकता में परिणित करता है। साहित्य के सन्दर्भ में विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। वास्तव में किसी विषय विशेष के सन्दर्भ में गंभीरता से चिन्तन, मनन , विवेचन, विचार विनिमय व सोच विचार करना विमर्श कहलाता है। विमर्श ही समकालीन उपन्यासों की शक्ति है। विगत दो दशकों से विमर्श की संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त हो रही है। चित्रा मुद्गल जी उन लेखकों में परिगणित की जाती है जिन्होंने भोगे हुए क्षणों को समाज के समक्ष बेबाकी से प्रस्तुत करके अपने साहित्य के माध्यम से जीवन का तूफ़ान, तूफ़ान का सैलाब, भावनाओं की सघनता, तनावों के कसाव को वाणी देने का प्रयास किया है। चित्रा मुद्गल जी के 'आवां' उपन्यास में उत्तर आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, विखंडन विमर्श ,श्रमिक विमर्श, सत्ता विमर्श, शिक्षा विमर्श, सर्वहारा विमर्श की अवधारणा ने विमर्श के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित किया है जिससे स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास में विमर्शमूलक वैचारिकता का चिन्तन सहजता में मिलता है।

ज्ञमलूवतकेरू विमर्शमूलक, साहित्य, उपन्यास, चित्रा मुद्गल, चिन्तन।

प्दजतवकनबजपवद
श्रेष्ठ साहित्य वही होता है जो अपने भीतर बाहर सार्वभौमिक मूल्यों, सन्देशों व उद्देश्यों को समाहित किये रखता है क्योंकि साहित्य सार्वकालिक, सार्वदेशिक व सार्वभौमिक होता है। सच्चा साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता को पिघला कर उसे समाजीकृत रूप में प्रस्तुत करता है। वैयक्तिकता को निर्वैयक्तिकता में परिणित करना ही कला है जो पाठकों को मुत्रमुग्ध करती है। समय के सच को उजागर करने के साथ गुणात्मक साहित्य सदैव प्रासंगिक रहता है तथा जन मानस को आलोक प्रदान करने के साथ दिशा निर्देश भी देता है। साहित्य में 1960 के बाद विमर्श की अवधारणा दृष्टिगत होती है। साहित्य के सन्दर्भ में विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है।

विमर्श शब्द सोच विचार, विचार विनिमय, चिन्तन मनन,परामर्श,विवेचना, आलोचना, वितर्क, अनुसंधान, अधीरता को द्योतित करता है। वास्तव में किसी विषय विशेष के सन्दर्भ में गंभीरता से चिन्तन, मनन , विवेचन, विचार विनिमय व सोच विचार करना विमर्श कहलाता है। विमर्श ही समकालीन उपन्यासों की शक्ति है। विगत दो दशकों से विमर्श की संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त हो रही है। विविध विमर्शमूलक विचारों का अंकन हिन्दी के समकालीन उपन्यासों में विस्तार से हुआ है।[1] आधुनिक काल में विमर्शवादी अवधारणा के अन्तर्गत उत्तर आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, झुग्गी झोंपड़ी विमर्श, आदिवासी विमर्श, विघटन विमर्श, विखंडन विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, सत्ता विमर्श, शिक्षा विमर्श, सेक्स विमर्श, श्रमिक विमर्श, बाज़ार विमर्श, पंजाबी संस्कृति विमर्श आदि का समकालीन उपन्यासों में विश्लेषण किया गया है। कथाकारों ने अपने अनुभवों, आंखों देखी घटनाओं के माध्यम से सड़ी गली सामाजिक व्यवस्था पर चोट की है। प्रखर व मुखर पात्र हमेशा से कथाकारों का कथ्य बनते रहे हैं और कथाकारों ने अपने अनुभवों से गुज़र कर लिखा है।

हिन्दी महिला कथाकारों की सशक्त पीढ़ी है जिन्होंने अपने रचना संसार को विविध रूप रंग से सुसज्जित किया है। चित्रा मुद्गल जी उन लेखकों में परिगणित की जाती है जिन्होंने भोगे हुए क्षणों को समाज के समक्ष बेबाकी से प्रस्तुत करते हुए अपने साहित्य के माध्यम से जीवन का तूफ़ान, तूफ़ान का सैलाब, भावनाओं की सघनता, तनावों के कसाव को वाणी देने का सातत्य प्रयास किया है। हिन्दी औपन्यासिक साहित्य के इतिहास में चित्रा मुद्गल जी का चुनौती मय कदम है जिसमें बाह्यजगत व अन्तर्जगत की कथा अन्तर्गुम्फित प्रतिबिम्बित होती है। निश्चय ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में चित्रा मुद्गल जी ने लोकप्रियता अर्जित की है। भावनाओं के साधम्मर्य में साहित्य–प्रेमियों को प्रभा खेतान जी के साहित्य से सहज आकर्षण प्रतिभासित होता है। चित्रा मुद्गल जी ने विमर्शवादी अवधारणा के अन्तर्गत उत्तर आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, विखंडन विमर्श, शिक्षा विमर्श, सेक्स विमर्श का प्रभावशाली चिन्तन अपने 'आवां' उपन्यास में किया है जिसका विवेचन इस प्रकार है–

उत्तर आधुनिक विमर्शः
उत्तर आधुनिक विमर्श मूलतः 20 वीं शती के उत्तरार्द्ध की देन है। उत्तर आधुनिकता के विषय में राघवेन्द्र प्रताप सिंह जी ने लिखा है कि उत्तर आधुनिकता किसी एक दार्शनिक के प्रति नहीं बल्कि सम्पूर्ण आधुनिक यूरोपीय दर्शन के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है। उत्तर आधुनिकता के लक्षण के रूप में अतियथार्थता, बिखराव, टूटन, विखंडन, विघटन, आधा अधूरापन, विकास तथा विनाश, कुँआरा मातृत्व,अनिश्चितता,आत्मनिर्भरता,अजनबीपन,अपूर्णता आदि को रेखांकित किया जाता है।[2] उत्तर आधुनिकता भले ही भारतीय सभ्यता व संस्कृति की विचारधारा नहीं है किन्तु हमारे समाज के अनुरू॰ न होने पर भी पश्चिम में स्थित इसकी जड़ें अपनी शाखाओं का फैलाव हम तक पहुंचा रहें हैं। 20 वीं शती के अन्तिम दो दशकों में उत्तर आधुनिक विमर्श को हमारे उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली।

वर्तमान समय में स्त्री की आत्मनिर्भरता व पश्चिमी सभ्यता के प्रभावस्वरूप बिना विवाह के बच्चे पैदा करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। नौकरी करने वाली स्त्री को जो सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, वह कुँआरी माता बनने वाली स्त्री को नहीं। पत्नी बने बिना माता बनने वाली स्त्री कार्यालय से प्रसूति काल में मिलने वाली सुविधाएं पाना चाहती है। चित्रा मुद्गल की 'आवां' उपन्यास की पात्रा सुनन्दा इसका सशक्त प्रमाण है। सुनन्दा मुस्लिम युवक के प्यार में फंस कर उसके बच्चे की कुँआरी माँ बनती है लेकिन वह काम पर नहीं जाती। कामगार अघाड़ी की ओर से तहकीकात करने के लिए नायिका नमिता सिंह को भेजा जाता है। चित्रा मुद्गल जी ने सुनन्दा के मुख से कहलवाया है–'' देखिए दीदी सुविधा का प्रावधान

गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को ले कर है न कि कुँआरी माँ या ब्याहता माँ के विशेषणों के लिए। कुँआरी माँ क्या ब्याहता माँ के ही समान जचकी के घोर कष्टों से होकर नहीं गुज़रती।उसे आराम की जरूरत नहीं होती।''[3] सुनन्दा के इस कथन में ऐसे अधिकार की मांग है जिसके बारे कोई कानून नहीं बन पाया।कम्पनी की ओर से सुनन्दा के आवेदन पत्र को नकार दिया जाता है।उसे नोटिस भेज दिया जाता है कि ––''आप तत्काल काम पर पहुँचिए, आप कुँआरी हैं। जचकी की सुविधा की कानूनन अधिकारिणी नहीं।'[4] इस उपन्यास की सुनन्दा का व्यवहार उत्तर आधुनिक विमर्श से प्रभावित दृष्टिगत होता है।

स्त्री विमर्शः

चाहे आज नारी शिक्षा प्राप्त कर अपनी धुन में सड़कों ,दफ्तरों, अस्पतालों, न्यायालयों में परचम फहरा रही है। वास्तविकता यह है कि नारी को अपने अस्तित्व, अस्मिता, मुक्ति को संस्कार के रूप में अपनाने का अधिकार नहीं। आज नारी शिक्षित हो कर मार्मिक रूप से समझदार हो गई है लेकिन घर का संचालक पुरुष को ही माना जाता है। प्रमिला कपूर का कहना हैः–'' अधिकांश पति यही चाहते हैं कि पारिवारिक आय में वृद्धि के लिए उनकी पत्नियां नौकरी करें। परन्तु साथ ही साथ घर बार के काम काज में हाथ बंटाने, बच्चों की देखभाल करने के लिए कतई तैयार नहीं।''[5] नारी चाहे जितनी भी शिक्षित क्यों न हो उसे समाज के सामने झुकना ही पड़ता है। स्त्री शिक्षा पर आज विशेष बल दिया जा रहा है क्योंकि शिक्षा निर्णय लेने की क्षमता बढ़ाती है व आर्थिक रूप से समर्थ बनाने मे सहायता करती है। प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या पढ़ी लिखी व आर्थिक रूप से समर्थ महिलाएं पुरुष शोषण का शिकार नहीं बनती। नारी चाहे सवर्ण हो या दलित अपमान और शोषण उसे दोनों स्थितियों में सहना पड़ता है परन्तु जब नारी को अहसास होने लगा तब मूक न होकर मुखर हो उठी।[6]

वर्तमान नारी आर्थिक रूप से स्वयंपूर्ण बनती जा रही है। सदियों से शोषण व दमन के प्रति स्त्री चेतना ने स्त्री विमर्श को जन्म दिया। स्त्री विमर्श वास्तव में आत्म चेतना, आत्म सम्मान, आत्म गौरव, समता व समानाधिकार की पहल का नाम है। प्रभा खेतान जी की मान्यता हैः–'' आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है। उसकी नियति में बदलाव है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन उसका मिजाज तो बदल रहा है।''[7]आत्मगौरव, अस्तित्व बोध, आत्म चेतना, आत्म निर्भरता ने नारी को आत्मविश्वस्त व सशक्त बना दिया है। स्त्री विमर्श जैसे चिन्तन ने नारी को बल प्रदान किया है। वर्तमान नारी आर्थिक रूप से स्वयंपूर्ण बनने पर पत्नी बने बिना मातृत्व को स्वीकार करती है। स्व के प्रति सजगता व अस्तित्व की चेतना स्त्री विमर्श की मुख्य शक्ति है जो हिन्दी उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में लक्षित होती है। स्त्री कथाकारों ने अपने अनुभवों, आंखों देखी घटनाओं के माध्यम से सड़ी गली सामाजिक व्यवस्था पर चोट की है व सशक्त स्त्री को रेखांकित किया है। कथाकार चित्रा मुद्गल जी ने लिखा है कि प्रखर व मुखर स्त्री पात्र हमेशा से कथाकारों का कथ्य बनता रही हैं। अगर मैं अपनी बात करूं, तो हम लोगों ने अनुभवों से गुज़र कर लिखा है।[8]

स्त्री चेतना का विकास उस उपन्यास का विचार तत्व है। आज समाज में ऐसी नारियां दृष्टिगत होती हैं जो न्यायग्रस्त नारी का साथ देने में हिचकचाती नहीं। इस उपन्यास की पात्रा बिमला बेन मिसाल हैं। सुनन्दा के कारण हिन्दू मुस्लिम विवाद खड़ा होता है। सुनन्दा की हत्या हो जाती है। सुनन्दा की अन्तिम यात्रा में सहभागी होकर बिमला बेन न केवल उसकी अर्थी को कन्धा देती है बल्कि पाटिल नामक पुरुष के कथन का भी खंडन करती है।शास्त्री की दुहाई देने वाले पाटिल की धज्जियां उड़ाती है।–''कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र सम्मत है क्या नहीं नहीं । निर्दोष स्त्री की हत्या करना शास्त्र सम्मत है पाटिल––मैं कन्धा किसी औरत की मैयत को नहीं दे रही –मैं हर जाति, धर्म व वर्ग की स्त्रियों का आह्वान करती हूं कि वे सब की सब श्मशान चलें और बारी बारी सुनन्दा की मैयत को कन्धा दें।''[9]

बिमला बेन की आवाज़ पर सब औरतें साथ देती हैं। एक औरत के आह्वान पर समर्थन मिलना नारी चेतना का ही परिचायक है।कमल कुमार अपने सम्पादकीय में नारीवाद के विषय लिखते है– '' नारीवाद का मूल उद्देश्य स्त्री की चुप्पी व सनातनी सोच को तोड़ना था।उसके अनुभवों को अभिव्यक्ति देना था। स्त्री जीवन के विविध प्रसंगों पर विचार ,तर्क व बुद्धि से सोचना समझना था'[10]

वर्तमान काल में नारी विमर्श की जड़ें जो फैलती जा रही हैं। उभरती हुई नारी चेतना को आज भी समाज सांप के फन की तरह देखता है जिसको कुचलने के लिए लाठी का सहरा लिया जाता है।स्त्री की अस्मिता से समाज परेशान हुए बिना नहीं रह सकता। सुनन्दा की हत्या के बाद नमिता स्त्री चेतना की सच्चाई प्रकट करती हैः–'' बीता कल दुःस्वपन सा द्वन्द्वसे छिपक नहीं रहा, जो कुछ देख रही हूं, उसकी नग्नता झिल नहीं रही। विचित्र है।स्त्री चेतना सिर उठाते ही फन हो उठती है उनके लिए। जो अपनी लाठी की हुकूमत निरापद बनाने के लिए बलि की परम्परा में बींसवी सदी के अन्त में भी विश्वास करते हैं।''[11] इस कथन से स्पष्ट है कि नारी चेतना के बारे में समाज की दृष्टि स्वस्थ नहीं है।

समाज में सचेतन नारी के प्रति आज भी दकियानूसी दृष्टि रही हो फिर भी नारी अपने दमखम के साथ निर्णय पर अटकी रही है। इस उपन्यास की पात्रा नमिता निदर्शन है। पिता की चिता को मुखाग्नि देने का कार्य समाज में पुरुष का अधिकार माना गया है। स्त्री विमर्श के प्रभावस्वरूप नमिता पुत्री होने के नाते इस अधिकार को जता रही है। नमिता अपने पिता के देहान्त के बाद पिता की चिता को मुखाग्नि देने का अधिकार पंडित जी के सामने दृढ़ता से जताती हैः–'' क्रिया कर्म मैं करूंगी पंडित जी, मुखाग्नि मैं ही दूंगी। मैं पांडे जी की बड़ी बेटी हूं। छुन्नू बच्चा है। बच्चे के हाथ से क्रिया कर्म करवाना अच्छा नहीं।'[12]

नमिता की इच्छा का परिवार वाले भी विरोध करते हैं। परिवार के सदस्य यह तय करते हैं कि छुन्नू ही पिता की चिता को मुखाग्नि देगा। नमिता आक्रामक होकर परिवार वालों का विरोध करती हैः–'' छुन्नू नहीं बैठेगा,कह दिया न, मैं बैठूंगी।बाबू जी ज़िन्दा थे तो अक्सर कहा करते थे– मरने पर तू ही क्रिया कर्म करेगी। तू मेरी समर्थ बेटी है, दस बेटी के बराबर।'[13]नमिता अपने पिता की चिता को अग्नि देती है। नमिता का व्यवहार नारी विमर्श का परिचायक है। जोकि बेटे को लेकर चली आ रही मान्यताओं का पर्दाफ़ाश किया है।

विखंडन विमर्शः

विखंडन विषयक विचार चिन्तन आधुनिक काल की देन है।विखंडन एक ऐसा क्रिया भाव है जिसमें विनाश की अपेक्षा विनाश,जोड़ने की अपेक्षा तोड़ना, बनाने की अपेक्षा बिगाड़ना,रोंपने की अपेक्षा काटना, समेटने की अपेक्षा बिखेरना, जुटाने की अपेक्षा बांटना का भाव निहित होता है। विखंडन शब्द नकारात्मक सोच विचार व व्यवहार का द्योतक है। वर्तमान जटिल व बदलते परिवेश में विखंडनवादी विमर्श उभर कर सामने आ रहा है। अव्यवस्था व बिगड़ैल माहौल विखंडन को जन्म देता है। कुसंगति व्यक्ति को प्रभावित करती है ऐसी कुसंगति के परिणामस्वरूप व्यक्ति विखंडनवादी मानसिकता का शिकार हो जाता है। इस उपन्यास की पात्रा नमिता की सहेली ममता प्रत्यक्ष प्रमाण है जब नमिता अपनी सहेली ममता से मिलने जाती है तब नमिता की मां अपनी बेटी के बरे में कहती हैः–'' चोरी छिपे ममता डग लेने लगी है। केमिकल, स्पैस्मोप्रॉक्सिम, नाइट्रोजन आदि –रात पढ़ाई के बहाने। शक तो मुझे साल भर से हो रही था। उसके विचित्र आचार व्यवहार देख। कहीं कुठ गड़बड़ है उसके संग। लेकिन कभी किसी डग रोगी को देखा होता तब सन्देह को न आधार मिल पाता।''[14]ममता कुसंगति के परिणाम पढ़ाई के बहाने रात को चोरी छिपे ममता डग लेना तथा उसके आचरण व व्यवहार में विचित्रता का आना विखंडन का द्योतक है।

स्वार्थ व लालच व्यक्ति के आचरण को विखंडित करने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। स्वार्थ पूर्ति के निमित अपने सम्पर्क में आने वाले को विखंडित करने में तनिक भी हिचकिचाता नहीं तथा किसी भी हद तक पहुंच सकता है। इस उपन्यास की पात्र संजय कनोई प्रत्यक्ष प्रमाण है । नमिता उद्योगपति संजय कनोई से सम्बन्ध स्थापित करके गर्भ धारण करती है। कुंआरी मां अपनी पढ़ाई में खलल पैदा करने की सोच उद्योगपति संजय के समक्ष प्रकट करके गर्भपात करवाना चाहती है। उद्योगपति संजय कनोई व निर्मला विवाह के तेरह साल बाद भी बच्चे को जन्म नहीं दे पाते। उद्योगपति संजय नमिता के गर्भ धारण करने पर उसे शादी का आश्वासन भी देते हैं। नमिता को गर्भपात करवाना से रोकते हुए कहते हैंः–''न––तुम मेरे बच्चे को हाथ नहीं लगाओगी ! तेरह साल बाद ––तेरह साल बाद मैं बाप बना हूं ।किसी मर्द के लिए बाप बनना क्या होता है––सात जन्म ले कर भी तुम महसूस नहीं कर पाओगी।''[15] संजय कनोई बाप बनने के लालच में नमिता को समझाता ही नहीं अपितु धमकाता भी हैः–'''देखो, मेरे बच्चे के संग तुमने आवेश में आकर कोई छेड़छाड़ की––मेरी चेतावनी को कोरी गीदड़ धमकी न समझान–तंदूर कांड हो जायेगा।'[16] उक्त कथन इस विचार का संकेत देता है कि स्वार्थ पूर्ति से आदमी के व्यवहार में विखंडन की वृति का संचर होता है। संजय कनोई परिणाम की चिन्ता किए बिना किसी भी स्मर पर पहुंचने के लिए विधि निषेध की चिन्ता नहीं करता।

श्रमिक विमर्शः

साहित्य मानव संवेदना व मानव व्यवहर का दूसरा नाम हैं। आम आदमी के जीवन की , उसकी समस्याओं को, उसके संघर्ष को ,उसकी सबलताओं–दुर्बलताओं को और उसकी दयनीय ज़िन्दगी को, तथा वंचना को लेखन का विषय बनाया गया। कहना आवश्यक नहीं कि श्रमिकों का जीवन भी आधुनिक काल में साहित्य लेखन का विषय बन गया। श्रमिक वह होता है जो शारीरिक परिश्रम करता है तथा प्रतिदान में रोज़ी पाता है। शारीरिक परिश्रम से रोज़ी कमाने वाले के बारे में चिन्तन, सोच तथा परामर्श ही मूलतः श्रमिक विमर्श है। वैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप एक ओर कारखानों का निर्माण हुआ तथा दूसरी ओर विविध व्यवसायों का तथा संस्थाओं का। इन सब के लिए मेहनतकश वर्ग की आवश्यकता थी।[17] श्रमिक इसी आवश्यकता की उपज है। कारखानों व विविध व्यवसायों ने श्रमिक वर्ग को अवश्य पैदा किया लेकिन उसका शोषण एक नई समस्या के रूप में उभर सामने आया। श्रमिकों के जीवन स्तर को जानने पहचानने का, तत्सम्बन्धी विचार चिन्तन का तथा उसके अंकन का उपन्यासों में सविस्तार विवेचन किया गया।

वस्तुतः समाज की सुविधाओं का निर्माता श्रमिक ही होता है। जीवन की आवश्यकताओं से जुड़ी प्रत्येक चीज़ श्रमिक के माध्यम से ही अस्तित्व में आती है। ओढ़ने पहनने तथा खाने पीने से सम्बन्धित सारी चीज़ों के मूल में श्रम ही आधारभूत साधन है। समाज का प्रत्यक्ष व परोक्ष सेवक श्रमिक कह होता है। फिर भी चिन्ता का विषय यह है कि समाज न श्रमिका के साथ रहता है न उसके आन्दोलन को समर्थन देता है। श्रमिकों के प्रति समाज की उदासीनता का भाव नमिता वनवानी मैडम के सम्मुख इन शब्दों में प्रकट करती हैः–''

श्रमिकों की लड़ाई में समाज का कोई दायित्व नहीं। मैम ! बाबू जी का कहना है कि हम संवेदनहीन नपुंसक समाज में जी रहे हैं। अट्ठारह महीने लम्बी खिंची वह हड़ताल कभी विफल न होती।न इतनी लम्बी खिंचती अगर समाज के अन्य वर्गों ने मज़दूरों के संघर्ष को अपने बुनियादी हक की लड़ाई समझा होता और उसका जोरदार समर्थन किया होता ।''[18] नमिता का यह कथन समाज की संवेदनहीनता का परिचायक है।

आज़ादी के बाद विभिन्न सेवा क्षेत्रों में महिलाओं का प्रवेश उल्लेखनीय रहा। परिणामस्वरूप महिला श्रमिकों की संख्या बढ़ती गई लेकिन सच यह है कि महिला श्रमिकों में चेतना का अभाव परिलक्षित होता है। इस उपन्यास के कामगाार आघाड़ी के सचिव पवार महिला श्रमिकों के बारे में नमिता से कहते हैं:–'' विडम्बना यह है कि इतने वर्षों के बाद आज भी महिला श्रमिकों में चेतना का वही अभाव नज़र आता है जो आठ दस वर्षों पहले था।––साजिश जो भी हो रही हो, जिसकी भी हो रही हो–––आघाड़ी महिला मोर्चे का मुख्य अभियान यही है कि स्वाधार ग्रहण करने वाली प्रत्येक स्त्री महिला श्रम सम्बन्धी कानूनी पक्ष से पूर्णतः परिचित हो।'[19] 'उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि महिला श्रमिकों में चेतना का अभाव व अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता का भाव तथा उनके प्रबोधन की प्रवृत्ति लक्षित होती है।

सत्ता विमर्श:

सत्ता से तात्पर्य है–प्रभुत्व। वास्तव में जिनके हाथ में अधिकार,प्रभुत्व या शासनसूत्र होता है वही सत्ताधीश कहलाता है। राजसत्ता से सम्बन्धित नीति को राजनीति कहा जाता है और राजनीति से सम्बन्धित विचार चिन्तन सत्ता विमर्श/राजनीतिक विमर्श कहलाता है। सत्ता विमर्श वह है जो अधिकार,प्रभुत्व,शक्ति और प्रशासन सम्बन्धी विचार दर्शन को प्रस्तुत करता है। सत्ता विमर्श में सत्ता व सत्ताधारी, राजनीति , राजनेता, तथा प्रशासन व प्रशासन सम्बन्धी विचार विमर्श की पहल होती है। वस्तुतः सत्ता विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। भारतीय राजसत्ता ने आधुनिक काल तक विभिन्न रूपों से करवटें बदली हैं। सत्ता से जुड़े हुए सत्तासीन राज्यकर्ता के आलोचना के सही दायित्व का निर्वाह आधुनिक कालीन साहित्यकारों ने ही किया है। राजनीति का कड़वा सच, उसका कृष्णधवल रूप,उसकी कठोर आलोचना हिन्दी उपन्यासों में दिखाई देती है। सत्ता विमर्श का मूल कारण स्वप्नभंग तथा भ्रमभंग है। जिन सपनों ले कर आज़ादी की लड़ाई लड़ी थी, वे साकार नहीं हुए। सपनों की टूटन नसीब हुई जिसका प्रधान कारण राजनीति है।

वस्तुतः जनता की सेवा के लिए सत्ताधीश बनना ही जरूरी नहीं होता। सत्ता में न होने पर जनता की सही सही सेवा करने की अगर इच्छा हो तो सेवा की जा सकती है।किन्तु स्वार्थी लोग खुद भी सत्ता में आना चाहते हैं और कमजोर या मूरख व्यक्ति को सत्ता सौंपकर सत्ता पर अपना अकुंश रखते हैं। दुर्बल को सत्ता पर बिठाना और उसके जरिए स्वयं ही शासन करना आज की अलग राजनीति है। इस उपन्यास के कामगाार आघाड़ी के नेता पवार नमिता को सत्ता का सच इन शब्दों में प्रकट करते हैं:–''जरूरी नहीं कि राजनीतिज्ञ सत्ता के गलियारे में स्वयं सत्ताधीश होकर शासन करें। किसी अनपढ़, मूर्ख, गंवार, गुंडे को भी वह राजगद्दी पर बैठा, व्यवस्था की बागडोर अपने हाथों में रख, उसे अपने संकेतों पर नचा सकताहै।नियंता बन शासन करने के इस निराले अंदाजे का सुख कम आह्लादकरी नहीं होता।''[20] इस कथन से समझने में देर नहीं लगती कि हमारे यहां सामान्य लोगों के जरिए सत्ता पर अपना नियंत्रण रखने की अलग नीति विकसित हुई है जोकि स्वार्थ सिद्धि का ही परिणाम है।

सत्ता से सम्बन्धित एक ओर सच सामने आता है कि सत्ता के बिना मूल्यों की रक्षा असंभव है। अगर मूल्यों की रक्षा की आकांक्षा और इच्छा है तो सत्ता हाथ में आने पर यह अधिक सुलभ हो जाती है। सत्ता के कारण मूल्यों की रक्षा कारगर सिद्ध होती है। इस उपन्यास के कामगाार आघाड़ी के सचिव पवार नमिता के सामने यही विचार प्रकट करते हैं:–'' सत्ता में आए बिना मूल्यों की राजनीति में पड़े –पड़े भीतर से सूखे, खोखले हो आए भोपले सदृश्य है। सत्ता से अर्थपद से नहीं सूखे भोपले से वीणा बन सकती है, राजनीति का बिगुल नहीं। मूल्यों की राजनीति सत्ता में आने के बाद ही कारगर सिद्ध हो सकती है।''[21] पवार का यह कथन अपनी सीमा में तो सच है किन्तु इस सच को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि सत्ता हाथ में आने पर लोग सिद्धान्तों व मूल्यों को भमल जाते हैं और सत्तासीन व्यवस्था का अेग बन जाते हैं।

शिक्षा विमर्श:

शिक्षा जीवन विकास का मुख्य साधन है।व्यक्ति, समाज, राष्ट का उत्थान शिक्षा के बलबूते पर ही संभव होता है। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है– व्यक्ति का सर्वांगीण विकास। शिक्षा के माध्यम से शारीरिक, मानसिक,भावात्मक, बौद्धिक एवम् चारित्रिक दृष्टि से शिक्षार्थी का विकास आपेक्षित होता है। व्यक्ति सम्बन्धी गहन चिन्तन ही मूलतः शिक्षा विमर्श है। शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न आयामों का सोच विचार, विवेचन विश्लेषण, तद्विषयक समीकरण हुआ करता है, वह शिक्षा विमर्श कहलाता है। शिक्षा के प्रचार प्रसार के अभियान में राधा कृष्ण आयोग,कोठारी आयोग की स्थापना कर शिक्षा विषयक नीति का निर्धारण किया जाता है। शिक्षा की बहुआयामी अभिव्यक्ति समकालीन उपन्यासों में प्रखरता से परिलक्षित होती है। हिन्दी उपन्यासों में शिक्षा जगत की नई समस्याओं का उनके उत्थान व पतन का ईमानदारी के साथ उद्घाटन किया जाता है। शिक्षा की सुविधा भारत की महती उपलब्धि है। वर्तमान जगत में परीक्षा व्यवस्था अव्यवस्था व अनाचार में बदल गई है। अध्यापकों का शोषण शिक्षा के क्षेत्र ओर भी दयनीय बना देता है।

शिक्षा के प्रचार से महिला वर्ग भी लाभान्वित हो रही है। नवयुवतियों में पढ़ने की ललक बढ़ रही है। उनमें आत्मचेतना सम्पन्न व स्वावलम्बी बनने की प्रवृति विकसित हो रही है। इस उपन्यास की नायिका नमिता प्रत्यक्ष प्रमाण है। नमिता संजय कनोई नामक आभूषण निर्माता के शादी के अभिवचन के प्रभाव में आ कर उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। संजय उससे बिना ब्याह किये ही बच्चा चाहता है। नमिता संजय के समख अपनी पढ़ाई पूरी करने का मन्तव्य प्रकट करती है:–''' मुझे अपनी पढ़ाई पूरी करनी है, संजय सिद्धार्थ मेहता के अनेक प्रस्तावों पर इसीलिए लात मारी कि मैं पढ़ना चाहती हूं––बच्चा पालने बैठ जाउंगी तो मैं पढ़ नहीं पाउंगी।'' [2] [2]नमिता के कथन में वर्तमान युवतियों की आत्मचेतना व स्वावलम्बन हेतु शिक्षा के प्रति बढ़ता आकर्षण दृष्टिगत होता है।

सर्वहारा विमर्श:

सर्वहारा वह होता हे जो इपना सब कुद गंवा चुका हैं वस्तुतः समाज का वह परम निर्मम अकिंचन वर्ग ही **सर्वहारा** वर्ग है। सर्वहारा विमर्श मूलतः आधुनिक संकल्पना है। जिसमें **सर्वहारा** व्यक्ति या समाज का विचार चिन्तन व विवेचन व विश्लेषण होता है। सर्वहारा वर्ग की सही पहचान उसकी पीड़ा है। ऐसा वर्ग जो बर्बादी, दुख, व्यथा, करुणा से युक्त जीवन जीता है। सर्वहारा वर्ग की प्रवृति है कि उसका मौन व मूक रहना। सर्वहारा वर्ग को दो जून रोटी के लिए तड़पना पड़ता है। भूखों रहने की नौबत इसी वर्ग को आती है।इा उपन्यास की नायिका मैडम वासवानी आभूषण विक्रेता है जो नमिता को नौकरी के लिए अपने घर बुलाती है।नमिता के अतीत के बारे में पूछने पर वह पूरी हकीकत बताती हैं। मैडम वासवानी नमिता से पूछती है:–'' तुम्हीरे पिता श्रमिकों के नेता होते हुए भी अण्णा साहब जैसे मज़दूर नेता ने तुम्हें नौकरह क्यों नहीं दी।'' तब नमिता उनको बताती है:–'' उनके लिए सिर्फ मेरे घर के चूल्हे की आग , महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण हैं सैकड़ों, हजारों, लाखों ईंधनविहीन वे चूल्हे जो हफ्तों –हफ्तों आग का मुंह नहीं देख पाते ।''[23] नमिता के उद्गारों से स्पष्ट होता है कि आज भी सैकड़ों, हजारों, लाखों लोग ऐसे हैं जिनके चूल्हे ईंधनविहीन हैं और उनकी रोजी रोटी का कोई ठिकाना नहीं है। सर्वहारा वर्ग के जीवन का यह कडवा सच है।

महिला कथाकारों की सशक्त पीढ़ी में चित्रा मुद्गल जी के 'आवां' उपन्यास में विभिन्न वर्ग, समाज,विषय, विचार चिन्तन व स्थिति को केन्द्र बिन्दु में रखकर विमर्शमूलक वैचारिकता का उद्घाटन किया गया है। □□□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□ □□□ □□ □□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□□□□□□ □□□□ □□ ***वह एक*** □□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□ □□□ ***पर वह*** □□□□□□ □□□□□□□ ***पर*** □□□□ □□□ □□□□□□□ □□□□ □□ □□□□□ □□□□□ □□□ □□□□ □□ ***हर जगह*** □□□□□□□दृ□□□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□□□ □□□□□□□ ***नजर*** □□□ □□□□[24] वर्तमान नारी में अस्मिता, आत्मचेतना, अस्तित्व बोध व अन्याय का विरोध करने की प्रवृति दृष्टिगत होती है। चित्रा मुद्गल जी के 'आवां' उपन्यास में उत्तर आधुनिक विमर्श, स्त्री विमर्श, विखंडन विमर्श ,श्रमिक विमर्श, सत्ता विमर्श,विघटन विमर्श, शिक्षा विमर्श, सर्वहारा विमर्श की अवधारणा ने विमर्श के विभिन्न पहलुओं को रेखांकित किया है जिससे स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास में विमर्शमूलक वैचारिकता की प्रस्तुति सहजता में मिलती है। □□□ □□□□□□ हर तरह □□ □□□□□□ □□□□ □□□□ □□ □□□□ □□□ □□□ □□□□□□ यह □□□□ □□□□□□□दृ□□□□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□ □□ इस □□□ □□□ □□□ आज □□ □□□□□□□दृ□□□□□□□ □□ □□□दृ□□□ □□□□दृ□□□□□□ □□ □□□□□□□□ □□ कह □□□□ □□□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□□□□ □□□□□□ □□□□□□ □□ □□□□□ □□□ □□□ गए □□□□ □□□□ □□□□ □□ □□□□□ □□□□ □□ □□□ □□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□□□□ □□□दृ□□□□ □□□ □□□□□□□□ □□ □□□□ और □□□□□□□□ □□ शहर □□□□□□□ □□□ □□□□□ वह □□□□ □□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□ □□□□ □□ □□□ □□□□□ इस □□□ □□□ यह लगभग □□□□ □□□□ □□ □□□□□□□□□□□ □□□□ □□□□ □□□□□□ □□□□□□□ □□ □□□□ □□□ फलक □□ □□□□□□□□ विमर्शमूलक वैचारिक चिन्तन से वैयक्तिक, सामाजिक, वैश्विक उन्नयन की दिशाएं स्पष्ट हो जाती हैं। समकालीन समाजों को पहचानने व सामाजिक समस्याओं के हल प्राप्त हो सकते हैं। संवेदनशील पाठक जीवन विकास की दिशाओं को पा कर उत्कर्ष का रास्ता खोजने की दृष्टि प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1 अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008।
2 देवशंकर नवीन, उतर आधुनिकताः कुछ विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2000।
3 चित्रा मुद्गल–आवां, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1999, चतुर्थ संस्करण 2005।
4 वही, पृ0 110
5 प्रमिला कपूर,,द चेजिंग स्टेटस ऑफ वर्किंग वूमैन इन इंडिया, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
6 क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्शः समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
7 राजेन्द यादव, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
8 प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003।
9 चित्रा मुद्गल, दैनिक जागरण,
10 चित्रा मुद्गल–आवां, पृ0 153
11 कमल कुमार, नया मानदण्ड, स्त्री विमर्श ,खण्ड–1 त्रैमासिकी, जनवरी–मार्च, 2001, अंक–19, पृ0– सम्पादकीय।
12 चित्रा मुद्गल–आवां, पृ0 161।
13 वही, पृ0 399
14 वही, पृ0 399
15 वही, पृ0 457
16 वही, पृ0 523
17 गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002।
18 वही,, पृ0 68
19 वही, पृ0 97
20 वही, पृ0 347
21 वही, पृ0 350
22 वही, पृ0 521
23 वही, पृ0 7
24 क वनजा, चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2011।